Chapter 6

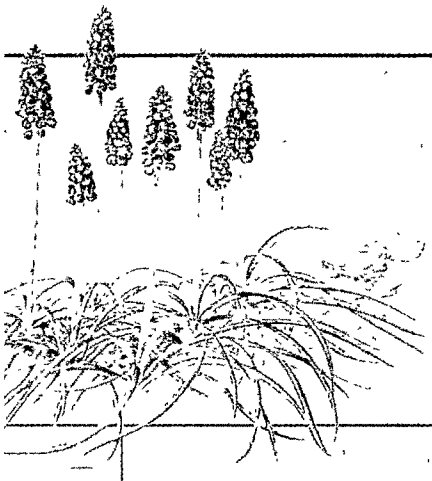

Date :	Page :
Topic :	

: छठ अध्याय :

: स्वातंत्र्योत्तर दलित तथा दलितेतर कहानीकारों की कहानियों में

दलित- विमर्श :

: षष्ठ अध्याय :

: स्वातंत्र्योत्तर दलित तथा दलितेतर कहानीकारों की कहानियों में दलित विमर्श :

प्रास्ताविक :

हिन्दी लेखन में दलित-चेतना आज सम्पूर्ण ताकत से उभरकर आ रही है जो युग का इतिहास बदलने के साथ-साथ समतामूलक समाज की स्थापना के ध्येय को केन्द्र में रखकर चल रहे हैं। पूर्ववर्ती अध्यायों में हिन्दी के कहानीकारों में, विशेषतः प्रेमचन्द और मंटियानी में, जो दलित-चेतना एवं दलित-विमर्श उपलब्ध होता है उसे विश्लेषित किया गया है। प्रस्तुत अध्याय×× अध्याय में हमने कतिपय स्वातंत्र्योत्तर काल के दलित एवं दलितेतर लेखकों

की कहानियों में निरूपित दलित-विमर्श पर चिंतन किया है । यहां एक बात की स्पष्टता आवश्यक है । मेरी ऐसी नम्र किन्तु दृढ़ समझ है कि साहित्यिक विमर्शों में हमें आत्यंतिक दबावों से बचना और उबरना चाहिए । इधर दलित लेखकों द्वारा प्रणीत साहित्य पुष्कल परिमाण में लगभग हर भाषा-साहित्य में आ रहा है । साथ-ही-साथ कुछ दलित लेखकों में यह भावना भी बलवत्तर रूप में पायी जाती है कि केवल दलितों द्वारा लिखे गये साहित्य को ही दलित-साहित्य के अन्तर्गत स्थान देना चाहिए । परन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूं । हमारे इस संघर्षकामी पथ पर जो दलितेतर लोग अपने वर्ग के लोगों की नाराजगी मोल लेकर भी , कई बार कुछ खतरे उठाकर भी , या अन्यथा मिलने वाले लाभों और लालचों को ठोकर मारते हुए भी , जो हमसफ़र रहे हैं , उनकी उपेक्षा या अपमान करना उचित नहीं होगा । प्रेमचंद , मटियानी , भीष्म साहनी , यशपाल , अभयकुमार सिन्हा , आलमशाह खान , जगदीश दीक्षित , मधुकर गंगाधर , रमेशचन्द्र शाह , डा. रामदरश मिश्र , डा. शिवप्रसाद सिंह , डा. मासूम रज़ा , ज्ञानी इत्यादि लेखकों की ईमानदारी पर शक करना स्वयं अपने पर शक करने जैसा होगा । हां , लेखक की मंशा और नीयत ठीक होनी चाहिए । वह शिविरपंथी राजनीति से प्रेरित×× प्रेरित नहीं होना चाहिए । और यह परंपरा हमें आदिकाल के सिद्धों और नाथों से लेकर मध्यकाल तथा आधुनिक काल तक मिलती है । सरहपा , धर्मदास , सुंदरदास , अखा (गुजराती) मीराबाई इत्यादि दलितेतर होते हुए भी उनके मन में दलितों के प्रति प्रेम और सम्मान का भाव था । दलित-साहित्य को एक संकुचित जैल बनाने के स्थान पर उसे राजमार्ग बनाना चाहिए जिसमें कबीर की शर्त पर कोई भी सिरफिरा शामिल हो सकता है — " जो घर जारै आपणा चलै हमारे साथ ।"

अतः डा. कुसुम "वियोगी" के निम्नलिखित मत से हम

कतई सहमत नहीं हो सकते । आज़ादी की लड़ाई के समय भी दीनबंधु एण्ड्रूज , श्रीमती एनी बेसण्ट जैसे कई अंग्रेज हमारे साथ थे । इस तरह से दलित-चेतना , दलित-विमर्श , दलितोद्धार के काम में बहुत से लोग हमारे साथ हैं , उन्होंने आज हम जिस मार्ग की ओर अग्रसरित हो रहे हैं , उसकी पृष्ठभूमि का निर्माण किया है , तो आज जब हमारे अपने नेता हमें मिल गये हैं , लेखक और साहित्यकार साहित्यकार मिल गये हैं , तो उनको छोड़ देने में कोई अक्लमन्दी तो न होगी । डा. बाबासाहब में विद्रोह है , आग है , पर घृणा और नफरत नहीं है । हमें इस तथ्य को विस्मृत नहीं करना चाहिए । डा. कुसुम वियोगी एक स्थान पर लिखती हैं —" येन-केन-प्रकारेण उनका प्रयास दलित साहित्य का प्रवक्ता बनने की जुगाड़ अधिक नजर आती है । सच मायने में ये वो बिल्लियाँ हैं , जो मलाई पर आँख गड़ाए हुए म्याऊँ-म्याऊँ कर रही हैं ।" ।

दलित साहित्य जिस समाजवाद की बात करता है वह डा. अम्बेडकर द्वारा प्रणीत धर्मनिरपेक्ष समाजवाद है । दलितों की आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक विषमता को समाप्त करना ही उस समाजवाद का लक्ष्य है । दलित साहित्य उस मनुष्य के नये अस्तित्व का साहित्य है जिसे अस्पृश्य मानकर किसी भी प्रकार के मानवीय अधिकार और संस्कार से वंचित रखा गया था । वही मनुष्य शिक्षित होकर आज स्वाभिमान से संसार के सामने अपने अस्तित्व को व्यक्त कर रहा है । आज दलितों ने , दलित-साहित्य के लेखकों ने साहित्य को राजनीतिक/ सामाजिक/ सांस्कृतिक/ धार्मिक क्रांति का एक प्रभावी हथियार माना है । जिसके कारण उसे "लिटरेचर आफ एक्शन " कहा जाता है ।

इस अध्याय में प्रारंभ में हमने कुछ दलित लेखकों की कहानियों को लिया है जो इस दलित चिंतन और विमर्श को आगे बढ़ाते हैं । उसके पश्चात् कुछ दलितेतर लेखकों की एतद्-विषयक कहानियों के विमर्श को

प्रस्तुत किया गया है । जो भी हो , ये सभी लेखक परिवर्तनकामी हैं । सिर्फ हंगामा खड़ा करना उनका मकसद नहीं है । वे यथा-स्थिति की तसवीर और तदबीर बदलना चाहते हैं , पूरी ईमानदारी से । ये लेखक वर्ण एवं जाति की धारणा को नकारकर "एबसोल्युट बेइंग इन सोशल सिस्टम " की वकालत करते हैं जिसकी बुनियाद समता , मैत्री और बंधुत्व के भाव पर टिकी है ।

§1§ अम्मा / ओमप्रकाश वाल्मीकि / :

ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित-सा साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं । उन्होंने अपने××××× अपनी " जूठन " आत्म-कथा के माध्यम से हिन्दी में यदि दलित आत्मकथा विधा को प्रतिष्ठा दिलाई है और उसे मराठी दलित आत्मकथाओं के समकक्ष ला खड़ा किया है , तो एक कवि रूप में भी उन्होंने अपनी विशिष्ट पहचान बनायी है । अभी तक उनके दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं -- "सदियों का संताप " सन् 1989 में प्रकाशित हुआ था । उस संकलन कुल 19 कविताएं संकलित थीं जिनमें " शम्बूक का कटा सिर" , " सदियों का संताप " तथा " तब तुम क्या करोगे ? " आदि कविताएं बड़ी रही हैं । दूसरा काव्य-संग्रह "बस्स ! बहुत हो चुका " सन् 1997 में प्रकाशित हुआ जिसमें कुल पचास कविताएं संकलित हैं । इन कविताओं में वे ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर कई प्रश्नचिह्न खड़े करते हैं । "शायद" कविता में कवि सीधा प्रश्न करते हैं --" चूहड़े या डोम की आत्मा / ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है / मैं नहीं जानता / शायद आप जानते हों ! "2 तो "आदिम रूप" नामक कविता में कवि शब्द की शक्ति पर भरोसा व्यक्त करता है --" शब्द ! तुम्हें कसम है / एक न एक दिन तुम / उतरोगे पृथ्वी पर / धूप बनकर ।" 3 हम इतना तो कह सकते हैं कि ओमप्रकाश वाल्मीकि के रूप में "शब्द" दलित साहित्य में धूप बनकर जरूर अवतरित हुआ है । यहाँ पर हमने उनकी एक कहानी "अम्मा" को लिया है ।

"अम्मा" ओमप्रकाश वाल्मीकि की दलित-विमर्श से सम्बद्ध एक सशक्त कहानी है । इसमें वाल्मीकिजी का एक तटस्थ ३ - निरपेक्ष वस्तुवादी अभिमत व्यंजित हुआ है । अम्मा तीन पीढ़ियों की कहानी है । पूरी कहानी में "अम्मा" का कहीं नाम नहीं है । कहानी में हमारा प्रथम परिचय "अम्मा" से "मुक्कू की बहू" के रूप में होता है । फिर वह अम्मा "शिबू की अम्मा " हो जाती है, अब वह मात्र अम्मा रह गयी है । अपनी सास से विरासत में उसे "कमाने का व्यवसाय" मिला है । यह "कमाना" क्या है ? एक गंदे, घिनौने, घृणित कार्य का बड़ा आभिजात्य-सा नाम । "भाषा-विज्ञान" में उसे ~~युफेमिज़्म~~ " अशोभन के लिए शोभन भाषा का प्रयोग" (युफेमिज़्म) की प्रवृत्ति कहते हैं । वस्तुतः पाखाना साफ करने के लिए "कमाना" शब्द का प्रयोग होता है । पहले सास यह काम करती थी । जब घर में बहू बनकर आयी तो सासने बाकायदा उसे "कमाने के ठिकानों " का चार्ज दे दिया । अम्मा को दो बेटे शिवचरण और किसन होते हैं । एक लड़की है — जिसका नाम वह "किरणलता " रखती है । "अम्मा" अपने बच्चों के जो नाम रखती हैं, उससे ही लगता है कि अम्मा पारंपरिक विचारों वाली नहीं है । वह अपने बच्चों और परिवार को यह पैतृक व्यवसाय नहीं देना चाहती । अतः वह अपने बच्चों को पढ़ाती है । शिवचरण दसवीं पास करके पालिका में क्लर्क हो जाता है किसन इण्टर तक पढ़ता है । नौकरी के लिए खूब भटकना पड़ता है । कभी कंडक्टरी करता है, कभी सिनेमाघर में टिकिट बेचता है, तो कभी ठेकेदार साथ सुपरवाइजरी । काफी थक-हारकर एक दफ्तर में वह क्लर्क हो जाता है । अम्मा को थोड़ा बहुत सुख इसीसे मिलता है ।

अम्मा किरण को भी पढ़ाती है । फिर एक फौजी से उसकी शादी ~~करके~~ कर करवा देती है। किसन की दुल्हन आठवीं पास थीं । व्यवसाय की तरह कर्ज भी अम्मा को विरासत में ही मिला है । पति और सास के समय से उनका परिवार सरदार प्रीतमसिंह से कर्ज लेता रहा है । किरण और किसन की

शादी के लिए भी उसीसे कर्ज लेना पड़ा था । यहाँ लेखक ने दलित जीवन का वह तथ्य भी रखा है कि ये लोग अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च शादी-ब्याह-सगाई आदि में करते हैं , उसके लिए कर्ज लेते हैं और उसीको पेढ़ने में पूरी जिन्दगी रीत जाती है ।

शिबू की अम्मा जहाँ कमाने जाती हैं , उनके एक असामियों में मिसेज चोपड़ा भी है । अच्छी असामी है । इनसे शिबू की अम्मा को अच्छे पैसे मिल जाते हैं । तीज-त्यौहार पर बखिस भी देती है । मिसेज चोपड़ा के विनोद नामक व्यक्ति से नाजायज संबंध है । एक दिन अकस्मात अम्मा उन लोगों को बिभत्स हालत में देख लेती है । "मिसेज चोपड़ा उसे ‖ अम्मा को ‖ भली और अच्छी लगती थी । उस दिन× दिन जो कुछ देखा , उसके बाद से उसके प्रति अम्मा के मन में एक अजीब-सी नफ़रत पनपने लगी थी । मिसेज चोपड़ा ने उसकी तनख्वाह में पाँच रुपये बढ़ा दिये थे उस रोज के बाद । " [5] अम्मा ने बड़े लोगों की बड़ी बातें ‖9‖ सोचकर इस बात को तो भुलाने की चेष्टा की , किन्तु एक दिन मौका देखकर विनोद ने अम्मा पर बलात्कार करना चाहा । वह बिफर पड़ी और झाड़ू से उसकी बुरी तरह से पिटाई करते हुए मिसेज चोपड़ा को सुना देती है — " भैणजी , इस हरामी के पिल्ले को कह देमा देणा ... हरएक औरत छिनाल ना होवे है ।" [6] अगले दिन अम्मा चोपड़ा का "ठिकाना" सस्ते दामों में हरदेई को बेच देती है ××इस×घर। चोपड़ी को बीस रुपये में बेच देने की खबर जब अम्मा की सास को होती है , तब वह तो चीख-चीख कर पूरा मोहल्ला सिर पर उठा लेती है — " अरी , नासपिटटी , करमजली , मेरे मरने के बाद ही कर लेती । इस चोपड़ी के बोत एहसान है म्हारे ऊप्पर । बखत-कुबखत जिब भी जरूरत पड़े थी , मदत करी है उन्ने । इबसे नहीं बरसों तें मैं व्हां जाती थी ... वो खानदानी लोग हैं , म्हारे जैसे तो इनकी जेब में पड़े हैं और ×××× तू लाटसाहबनी ... उत्ती बड़ी हो गयी कि उसे ही बेच के आ गयी ।" [7] दो-चार दिन में सास तो रो-गाकर चुप हो गयी , पर एक दिन सुक्कू ने भी इसकी चर्चा छेड़ दी —

"उस रोज नगरपालिका में तनख्वाह बंटी थी । ‖ सुक्कू नगरपालिका में सफाई कामदार था । ‖ सुक्कू बहुत दिन बाद ऐसी दारू का पव्वा चढ़ाकर आया था । तनख्वाह अम्मा ‖ अर्थात् पत्नी ‖ के हाथ पर रखते हुए बोला, " ये ले रुपये ... पर एक बात कान खोल के सुन ले ... शिबू की अम्मा ... तूने यो अच्छा नी करा ... माँ का जी दुखाया ... ये ठिकाने माँने कितने जोड़-तोड़ करके ×××× घेरे थे । घर का सारा टैम-टैबर इन्हीं से चला करे था । बापू तो कुछ करे ना था । माँने बहुत बुरा टैम निभाया इन ठिकानों के भरोसे, रोटटी, पाणी, कपड़ा-लत्ता सबकुछ आवे था । बहन का जिब ब्याह हुआ था तो इस चोपड़ी ने बड़ी मदत करी थी, उसीको तू बेच के आ गयी । तूने अच्छा नो किया शिबू की अम्मा ... जा माँ से माफी माँग ले और बीस रुपये देके हरदेई से ... चोपड़ी जैसी बीरबानी ‖स्त्री‖ ढूंढे से भी ना मिलेगी । जित्ती सूरत से खूबसूरत वैसी ही सीरत से भली । " शिबू की अम्मा को चुप देखकर सुक्कू ने जोर से कहा, " तू चुपचाप धौंधौमाई बनके बैठ्ठी है ... मेरी बात सुन रही है ? " अम्मा खामोशी से सुक्कू का वार्तालाप सुन रही थी । उसके मन में अजीब-सा शोर उठ रहा था ।"[8]

तो हरदेई के चरित्र की कुछ रेखाएं देखिए -- " हरदेई बदजबान औरत थी । गालियाँ तो उसके मुंह से धारा-प्रवाह फूटती थीं । गाली के बगैर तो उसका कोई वाक्य ही नहीं बनता था । पूरा किस्सा अम्मा से सुनकर बोली, " तै तो मूरख है नासपिट्टी ×××× अपनी माँ के यारकू टट्टी में घसीट लेती । पहले उतरवाती उसके कपड़े कि आ तुझे करा दूं मसूरी की सैर । फिर उससे करवाती उसले भिगनी का नाच । झाडू से पीट-पीट कर साले कुत्ते कू सड़क पे लिया ली । घुसल निकल जाता चोटटे ‖ गाली ‖ का जिब गणपति का हिलाता, सड़क पे दौड़ता । भूल जाता सारा इश्क और वह चोपड़ी ... ऐसी लुगाइयों का इलाज मैं जाणूं हूँ ... ये ले थाम लोट ‖नोट‖ ... इब कल से चोपड़ी मेरी । साली ... दो-दो बच्चों की माँ होके इश्क करे है ।"[9]

अम्मा को बाहर के घाव तो मिले ही है । पर उसके अपनों ने उसे जो घाव दिए हैं, वे किसी नासूर से कम नहीं है । अम्मा में शुरू से ही एक चेतना मिलती है । वह हमेशा अपने बच्चों को झाड़ू के काम से दूर रखती है । सास-ससुर या जात-बिरादरी के लोग टोकते तो कह देती — " ना ... मैं ... अपने जातकों (बच्चों) को इस गन्दगी में ना धकेलूंगी । मिहनत-मजूरी करा लूंगी पर उनके हाथ में झाड़ू ना धुंगी । " ।।

पहला घाव अम्मा को शिवचरण की ओर से मिलता है । दसवीं पास करके शिवचरण नगरपालिका में लग गया था । ××संदर्भ×× यह काम उसे एक ठेकेदार के जरिये मिला था । उसका कमीशन 20 प्रतिशत था । कमीशन काटकर जो बचता था वह अम्मा के हाथों में रख देता था । "अम्मा को विश्वास होने लगा था कि दिन पलटेंगे । " और दिन पलटे भी, पर अम्मा की सोच के खिलाफ । शिवचरण थोड़े ही दिनों में नगरपालिका में अपना स्थान बना लेता है । मजदूर नेता के रूप में वह उभरने लगा है । नगरपालिका के अफसर-बाबुओं से भी उसका संपर्क बढ़ने लगता है । फलतः पहले जो काम ठेकेदार कराता था, वह अब शिवचरण कराने लगता है । वह भी अब लोगों को रिश्वत या मोटा कमीशन लेकर काम पर लगाने लगा है । सगे-संबंधी तथा जात-बिरादरी के लोगों से भी वह कमीशन खाने लगा है । अम्मा के शब्दों में वह "आदमखोर" हो गया है (12) । इसका पता भी उसे हरदेई की बहू से चलता है । हरदेई के बेटे रामखिलन को नौकरी पर लगाने के उसने तीन हजार रुपये लिये थे । अम्मा के हृदय को ठेस लगती है । शाम को शिवचरण के आते ही अम्मा साफ-साफ शब्दों में कह देती है — " शिबू, आजकल मे तू जो करे है ठीक ना है ... जो मैंने पता होता के तू इस तरियाँ का पैसा कमावे है तो मैं तेरे पैसे कू हाथ भी ना लगाती । तैन्ने पढ़ा-लिखा दिया । तेरी सादी कर दी ... मेरा काम खतम ... अच्छा इन्सान न बना सकी यों मेरा कसूर । कल से तू

अपना चौका-चूल्हा अलग कर ले ... मैंने ना खाणी इस कमाई की रोटटी । अलग रहके चाहे किसीने लूट या मार ... मेरे से कोई मतलब नहीं ।"[13] शिवचरण अम्मा को खूब समझाने की कोशिश करता है, पर अम्मा अपने निर्णय पर अटल रहती है । " उसे लगातार यह दर्द साल रहा था के उसकी कोख से एक आदमखोर ने जन्म ले लिया है, जो अपनों को ही खा रहा है ।"[14]

पर सबसे बड़ा फफोला तो अम्मा को विशन के लड़के मुकेश ने दिया । एम.ए. करने के उपरांत नौकरी के लिए खूब हाथ-पैर मारे । नौकरी नहीं मिली । अन्ततः वह अपनी स्कूल-टीचर के साथ रहने लगा । स्कूल-टीचर अपने दो छोटे-छोटे बच्चों के साथ पति से अलग रहती थी । अम्मा को जब यह मालूम हुआ तब उनको बड़ा सदमा पहुंचा । शिवचरण की बहू जब अपनी सास से कहती है — " मुकेश का ब्याह कर दो, सुबह का भूला घर लौट आवेगा ।"[15] उसके जवाब में अम्मा जो कहती है, उनके चरित्र को काफी ऊपर उठा देती है यह बात —" ना बहू ... किसी निरदोस बच्ची कू इस सांड के गले में ना बाधूंगी । जिब आदमी कू बासी गोश्त का चस्का लग जावे है तो ताजी गोश्त कू हाथ भी ना लगावै । मैं जीते जी किसी गरीब की बेट्टी को जान-बूझके गड्डे में ना धकेलूंगी ।"[16]

अम्मा अपने बच्चों को तो, अपनी बहुओं को भी, "ठिकानों" के काम से अलग रखती है, पर खुद आखिर तक वह काम करती है । विशन बहुतेरा समझाता है कि अब उनको यह सब करने की क्या जरूरत है ? तब अम्मा अपने बेटे से जो कहती है वह बात भी गौरतलब है —" तेरे बापू रिटायर हुए जो पैसे मिले थे, उनसे सरकार का कर्जा उतार दिया, इब तो जिन्दगानी थारे ही भरोसे है .. जिब किरपलता अपने जातकों के लेके आवे है तो उनके खाली हाथ पे कुछ रखने के लिए तो मेरे पास होना चाहिए । कब तक तेरे से मांगूंगी ... ना बेट्टे ... उस सुख के खातिर मुझे काम करना पड़ रहा है तो आखिरी सांस तक करूंगी । पर किसीके आसरित ना रहूंगी ।"[17]

अम्मा के उपर्युक्त कथन से उनके स्वाभिमान का पता चलता है । कहानी के अन्त-भाग में किशन से अम्मा जो कहती है उससे उनके समग्र चरित्र पर प्रकाश xxxxxxxxxx पड़ता है । किशन अम्मा को समझाता है कि अब उनको यह सब करने की जरूरत नहीं है । " अच्छा नहीं लगता अम्मा ... आप गन्दगी ढोने जाती हैं ... लोग देखते हैं तो शर्म आती है । "[18] उसके जवाब में अम्मा कहती है — " बेट्टे किसन ... तेन्ने और तेरे जातकों ने सरम आवै ... इस-लिए तो पढ़ाया-लिखाया , थारे सबके हाथ से झाड़ू-टोकरा छुड़ाया ... मेरे बाद इस घर की कोई बहू-बेटी ठिकानों में नहीं गयी ... सिरफ इसलिए कि तुम लोग इज्जत से जीना सीखो ... ऐसा कोई काम न करो जिससे सिर नीच्चा हो ... कहीं कमी रह गयी है बेट्टे जो तेरा मुकेश जूठन पर मुंह मारने गया , वह भी नौकर की तरह , उसके बच्चों को संभालने , इज्जत से ब्याह करके घर ले आता ... भले ही दो जातकों की मां है । मेरा दिल खुस हो जाता । अपनी बहू बणा के रखती ... पर या तो ठीक ना है , अच्छा नी करा उन्नै ..."[19]

तो यही है अम्मा । इसकी इतनी विस्तृत विवेचना इसलिए कि प्रायः लोग दलित-साहित्य पर आरोप लगाते हैं कि —[20]

/1/ दलित साहित्य प्रचारी है ।

/2/ दलित साहित्य एकसुरी है ।

/3/ दलित साहित्य में व्यक्ति व्यक्त नहीं होता ।

/4/ दलित साहित्य में आक्रोश सुनाई पड़ता है ।

/5/ दलित साहित्य नकारात्मक है ।

"दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र " में डा. शरणकुमार लिंबाले ने तो इसके जवाब दे दिए हैं । परंतु उसका रचनात्मक जवाब इस कहानी में ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने दे दिया है । प्रबंध की सीमा-मर्यादा के कारण इस अध्याय में अन्य कहानियों की इतनी विस्तृत चर्चा नहीं होगी । इसके लिए तो एक अलग पुस्तक की दरकार रहेगी ।

{2} बुध सरना कहानी लिखता है { बुद्धशरण हंस } :
===

जब कोई निम्न जाति या वर्ण का व्यक्ति लेखक या कवि होने का दावा करता है , तब समूची मनु-व्यवस्था के पक्षधर लोग उस पर टूट पड़ते हैं । इस तथ्य का व्यक्तिगत अनुभव शैलेश मटियानी को भी हुआ था जब उनके लेखक-जीवन के प्रारंभ में लोग कहते थे — " अरे , यह बिशुनवा जुआरी का बेटा और शेरसिंह बूचड़ का भतीजा लेखक बन रहा है । बाप-दादा औरx उसके जुवा खेलते-खेलते ही खत्म हो गये , चाचा भी सभी बूचड़ {कसाई} और जुआरी ही हैं ... और यह लौंडा कविता-कहानियाँ लिख रहा है । ... अरे , घोर कलियुग किसे कहते हैं ? जुआरी का बेटा , बूचड़ का भतीजा पंत- इलाचन्द्र बनने का सपना देख रहा है ।"2।

"बुध सरना कहानी लिखता है" बुद्ध शरण हंस की यह कहानी भी उसी मानसिकता के T रूपायित करती है । यह कहानी दलित-विमर्श के कई पक्षों को उजागर करती है । कुल कथ्य इतना है कि बुद्धशरण हंस नामक एक दलित लेखक कहानी लिखता है । जेठू पंडित की पत्नी उसकी कहानियों को पढ़ती रहती है । एक दिन जेठू पंडित पंडिताइन को पढ़ते हुए देख लेते हैं और इसी बात पर बिफर उठते हैं । इसमें लेखक ने ब्राह्मणवादी विचारधारा पर व्यंग्य किया है । पंडिताइन कुछ उदार और विचार-संपन्न है । जेठू पंडित पंडिताइन को मनु-महाराज की बातें समझाते हैं । वे उसे ब्राह्मणवाद का रहस्य समझाते हैं कि भय और अंध-विश्वास ये दो सशक्त हथियार हैं ब्राह्मणवाद के । जब तक ये दोनों रहेंगे ब्राह्मण सही-सलामत रहेंगे । बातों ही बातों में जेठू पंडित दलित इंजिनियर लेढ़ुवा की बात भी सुना देते हैं । लेढ़ुवा के जन्म पर उसका नाम रखने जेठू पंडित ही जाते हैं । वैसे तो जेठू पंडित को दलित बस्ती से ही घिन आती है , परंतु लेढ़ुवा की माँ के पास एक गाय थी । उस पर पंडित की नजर थी । पंडित लेढ़ुवा की माँके मन में भय भी घुसा देते हैं , उसका

ऐसा सुंदर नाम {?} भी रख देते हैं और दान-दक्षिणा के नाम पर उसकी गाय भी हड़प लेते हैं । किन्तु पंडितजी के दुर्भाग्य से लेढ़ुवा पढ़-लिखकर इंजिनियर हो जाता है । पंडितजी के ही शब्दों में — " अब देखो , उ ससुरा , पढ़कर हो गया इंजिनियर । अपने को एसकुटी इंजिनियर कहता है । सूट पहनता है , बावड़ी झारता है , चमाचम जूता पहनता है ।"[22] किन्तु पंडित को अपनी बेवसी में भी एक संतोष है — " मगर नाम तो मेरा ही दिया हुआ रह गया – लेढ़ुवा । "[23] और "लेढ़ुवा" इंजिनियर भी आज भी पंडितजी को झुककर प्रणाम करता है और दस-बीस रुपये थमा देता है । कहानी के अंत-भाग में पेंठू पंडित पंडिताइन को सलाह देते हैं , बल्कि आज्ञा करते हैं , कि जब कभी रात में वे कहीं कथा पढ़ने जाएं तो घर का दरवाजा खुला ही रखें , क्योंकि " तुम यदि किसीको घर में बुलाकर किवाड़ बन्द कर लोगी , वहाँ हम क्या करेंगे ।"[24] इस प्रकार पंडित को अपनी पत्नी के चरित्र पर विश्वास नहीं है । "लज्जा" फिल्म का पुरुषोत्तम हमारी स्मृति में कौंध जाता है । लेखक इसमें यह भी प्रस्थापित करते हैं कि ब्राह्मणवाद घृणा का प्रचारक है । लेखक अपनी तरफ से कोई भी टिप्पणी नहीं देते हैं । सारी बात पेंठू पंडित के वक्तव्यों से ही व्यंजित हो जाती है । यथा —

/1/ " अछूत को अच्छा नाम रखने का नियम ही नहीं है । मनु महाराज का बनाया हुआ नियम है कि ब्राह्मण का नाम मंगलमय , क्षत्रिय का नाम वीरतामय , वैश्य का नाम धनमय तथा शूद्र का नाम निन्दामय-घृणामय रखना चाहिए । इतना ही नहीं मनु महाराज ने तो यहाँ तक कहा है कि कि शूद्रों का नाम ही नहीं काम भी घृणाजनक होना चाहिए । इसीलिए हम लोग चमार से मरा हुआ जानवर फिंकवाते हैं , मेहतर से पाखाना साफ करवाते हैं , धोबी से कपड़ा साफ करवाते हैं और इन अछूतों के बच्चों का नाम रखते हैं — भिखारी , घेंगू , मंगू , गुडू , छूछू , बाघन , फेंकन , नत्थू ।"[25]

/2/ " हिन्दू जब तक अंधविश्वासी बने रहेंगे , ब्राह्मणों को कट

नहीं होगा । इस देश से कुछ भी चला जाय । हम ब्राह्मणों को गम नहीं होगा । केवल अंधविश्वास को महाप्रभु बनाये रख । अंधविश्वास ही ब्राह्मण की संपत्ति है । अगर वह गया तो तब समझो ब्राह्मणवाद, सनातन धर्म का xxxx सत्यानाश ।" 26

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में लेखक ने "दलित-विमर्श " को बड़े व्यंग्यात्मक ढंग से उकेरा है ।

{3} और वह पढ़ गई { डा. कुसुम वियोगी { :

डा. कुसुम वियोगी एक प्रतिबद्ध एवं प्रतिश्रुत दलित लेखिका है । "चर्चित दलित कहानियाँ " की संपादिका वही हैं । इस संकलन में उनकी दो कहानियाँ हैं — " और वह पढ़ गई " तथा " अन्तिम बयान " । यहाँ क्रमशः उनमें निरूपित "दलित-विमर्श " की चर्चा करेंगे ।

प्रस्तुत कहानी डा. कुसुम वियोगी की एक दलित-चेतना संपन्न कहानी है । कहानी में डा. xxxx अम्बेडकर तथा " जय भीम " { अभिवादन करने का दलितों का पसंदीदा शब्द { के संदर्भ आये हैं । ओमप्रकाश वाल्मीकि की " अम्मा" की भाँति इस कहानी की श्यामो भी लोगों के यहाँ "कमाने" जाती है । पर जहाँ "अम्मा" में दलित-चेतना है , वहाँ xxxx श्यामो में उसका अभाव है । वह अपनी लड़की चेतना को भी कई बार अपने साथ ले जाती है । चेतना को इस काम से घिन है । इस बात पर श्यामो उसको जब-तब पिटती है । लेखिका ने अछूतों की बस्ती के xxxx घृणित-गंदे माहौल का भी यथार्थ चित्र अंकित किया है । इस दरमियान चेतना का परिचय एक "अंकल" से होता है । अंकल इस लड़की में पढ़ने की और आगे बढ़ने की जो लगन है उसे ताड़ लेते हैं । वह श्यामो को समझाते हैं — "जब बच्ची पढ़ना चाहती है तो उसे पढ़ा । ... अरी , तुम्हारी तो कट गई , लेकिन विरासत में इसे तो मत दे ये धंधा पगली । अब तो सरकार भी सिर पर मैला ढोनेवालों की विमुक्ति की

योजनाएं चला रही हैं । और एक तू है , जो बच्ची से ..." [27]

चेतना में दलित-चेतना है । वह अंकल से डा. बाबासाहब के बारे में बातचीत करती है । उसने बाबासाहब के संदर्भ में टेलिविजन पर एक टेलिफिल्म देखी थी , जिसमें बाबासाहब का संदेश था — शिक्षित बनो । संगठित रहो ।। संघर्ष करो ।।। [28] इससे प्रभावित हो रहा कि -" गांव की कीच भरी नलियों में / मौसम के खिलाफ " [29] कुछ आवाजें जरूर उठ रही हैं , और जिससे भगवानसिंह जैसे कवि भविष्य के प्रति आश्वस्त हो रहे हैं । [29] तो अंकल भी इस लड़की से आश्वस्त है । इतने में चेतना बीमार हो जाती है । यहां लेखिका ने इस वर्ग में फैले अज्ञान और अंधविश्वास के कुहासे को भी दिखाया है । चेतना को किसी अच्छे डाक्टर के पास ले जाने या अस्पताल में भर्ती करवाने के स्थान पर श्यामो "स्याने-सिमाने " लोगों को दिखाती है । अंकल चेतना को देखने जाती है । वह अंकल से कहती है —" हू अंकल मुझे बचाओ । ये लोग मुझे मार देंगे । मैं बीमार हूं , कभी झाड़-फूंक , कभी टोटका , तो कभी ढोल-डमरुओं की आवाजें सुन-सुनकर माथा फट-फट पड़ता है । उकता गई हूं , रोज-रोज की झाड़-फूंक से , कोई "भूतनी" , कोई "चुड़ैल" का साया बताता है । मेरे बाल नोंच-नोंच डाले हैं , इन कमीने स्याने जादूगरों ने , देखो तो सही ।"[30]

अंकल उसे अस्पताल में दाखिल करवा देते हैं । कुछ दिनों बाद चेतना स्वस्थ होकर वापिस आ जाती है । एक दिन वह मिठाई का डिब्बा लेकर अंकल के पास पहुंचती है और उनको सुखद समाचार देती है कि वह बी.ए. में प्रथम श्रेणी से पास हो गई है । अंकल की आंखों में खुशी के आंसू छल-छला आते हैं । कहानी के अंत में हमारी चेतना में एक सवाल उठता है कि यहां तो चेतना को एक अंकल मिल जाते हैं और वह पढ़ जाती है , पर न जाने कितनी ऐसी चेतनाएं होंगी जो "ओझा-गुनियों और स्यानों " के चक्कर में भतनी और चुड़ैलें बनकर दम तोड़ देती होंगी । यहां तो चेतना पढ़ जाती है , पर कितनी ऐसी चेतनाएं होंगी जो अशिक्षित रहकर मैला उठाने पर मजबूर होती होंगी ।

§५§ अंतिम बयान § डा. कुसुम वियोगी § :

"अंतिम बयान" कहानी भी डा. कुसुम वियोगी की एक दलित-चेतना संपन्न कहानी है । अतरो , कमला और भरतरी गांव के खेतों में ढोर-डंगर के लिए "भखरइ " न्यार" लेने जाती हैं । अतरो कुंआरी जवान लड़की थी , साथ ही खूबसूरत । कमला और भरतरी दो-दो चार-चार बच्चों की मां बन चुकी थीं । अतरो उन दोनों को "भाभी" कहती है । गांव के प्रधान का लड़का राजेन्द्र अतरो पर मिट चला था । पर यह प्यार एकतरफा था । अतरो उसे पसंद नहीं करती थी , क्योंकि उसे मालूम था कि राजेन्द्र का प्यार केवल वासना बुझाने तक का था । राजेन्द्र प्रधान का इकलौता बेटा था । उसके जन्म के संदर्भ में लेखिका ने सांकेतिक ढंग से इशारा किया है — " भला हो भुल्लन का , जो बीस साल बाद प्रधान की घरवाली की कोख हरी-भरी हो गई वरना तो बांझ कहलाने के डर से घर से बाहर ही न निकलती थी ।" [31]

दूसरे शब्दों में कहें तो प्रधान की अनौरस संतान , नाजायज औलाद , हरामी । पर प्रधान का लड़का था , ऊपर से इकलौता । करेला और नीम चढ़ा । कई दिनों से इन तीनों को घेर रहा था । कमला और भरतारी को भाभी कह रहा था । उनको अपने खेतों से "न्यार" काटने का नौता भी देता है । एक दिन राजेन्द्र भरतरी से कहता है —" भाभी , तू कमला के साथ जा । अतरो अभी आएगी थोड़ी देर में ।" [32] भरतरी को थोड़े डर लगता है , पर अतरो की बातों से उसे भरोसा हो चला था कि वह अपनी आबरू बचाने में सक्षम है । राजेन्द्र के हाथों में एक कट्टा § देशी पिस्तोल § था । मतलब साफ था । अतरो अगर विरोध करेगी तो "कट्टा" के जोर पर वह अतरो पर बलात्कार करेगा ।

अतरो और राजेन्द्र के बीच क्या घटित होता है , उसका बड़ा सांकेतिक वर्णन लेखिका ने किया है — " राजेन्द्र ने कपड़े उतारे ।

उसका पुरुष तन चला था । ... थोड़ी देर बाद ... अतरो सिर पर न्यार की गठरी उठाये घर की ओर चल पड़ी ।"[33] राजेन्द्र दो-तीन दिन तक जब घर नहीं लौटता है तो प्रधान गुमशुदी की रिपोर्ट दर्ज कराते हैं । पाँच दिन राजेन्द्र की लाश कुएं से मिलती है । पुलिस आती है । तफतीश होती है । पोस्ट मोर्टम के बाद लाश प्रधान को सौंप दी जाती है । पोस्ट मार्टम की रिपोर्ट देखकर दरोगा की साँसें एक पल को रुक जाती हैं । " ज्यों ही लाश को नहलाने-धुलाने के लिए कपड़े उतारे तो आसपास खड़े लोग विस्मय के भाव से देखने लगे । "[33] रिपोर्ट से पुलिस हरकत में आ जाती है । यहां भी लेखिका व्यंग्यात्मक चिकोटी लेना नहीं चूकती है —" पुलिस की सूंघ कुत्ते की सूंघ से ज्यादा होती है । अगर सूंघने पर आ जाए तो ।"[34] और यहां तो आना ही था , क्योंकि मामला प्रधान के लड़के का था । एक बड़े आदमी के लड़के का । तफतीश करते-करते पुलिस की गाज अतरो पर जा गिरी । पुलिस ने अतरो को थाने में चलकर बयान देने को कहा । उस पर पूरे गांव ने एकत्रित होकर समवेत स्वर में कहा —" दरोगाजी जो बयान लेना हो , यहीं गांव के सामने लो । सातों जमात की बेटी गांव की धी-बेटी होती है ।"[35]

कहानी का अंत इस प्रकार है : अतरो दहाड़ कर बोलती है । दौड़कर अपने घर में जाती है और कागज का एक बंडल लेकर आती है । वह दहाड़ते हुए सबको कहती है —" गांव वालों सुनो । दरोगा को बयान चाहिए तो सुनो । मेरा बयान । ... (और) अतरो ने कागज के बंडल में से निकाल कर राजेन्द्र का कटा हुआ पुरुषत्व लहरा दिया ।"[36] यही है कहानी — " अंतिम बयान " ।

वस्तुतः अतरो बलात्कार का इन्तकाम लेने के लिए राजेन्द्र की खसी कर डालती है । लगभग तीस-चालीस साल पहले वेनेझुएला की एक स्त्री ने अपने ही पति के लिंग को काट डाला था । उसका नाम था श्रीमती लोरेना बोबिट । पति के यौन-अत्याचारों से मुक्ति पाने के लिए उसने ऐसा किया था । इस घटना की बड़ी चर्चा हुई थी ।

अंग्रेजी भाषा में इसके बाद एक नया क्रियावाची शब्द जुड़ गया था — "बोबिटिंग" — औरत द्वारा पुरुष की जबरदस्ती खसी । इस विषय को लेकर कुछ वर्ष पूर्व डिम्पल कपाड़िया की मुख्य भूमिका में एक फिल्म भी बनी थी : जख्मी औरत । तो यह भी एक जख्मी औरत्नी लड़की की कहानी है । लेखिका ने गाँवों में आये सकारात्मक परिवर्तन को चिह्नित करके अपनी कलात्मक तटस्थता का परिचय दिया है कि "xxxxx लोग अब अछूतों जैसी निम्न जाति की लड़कियों को भी "गाँव की धी-बेटी" मानने लगे हैं ।

§5§ आगे बढ़ो ... । §डा० योगेन्द्र मेश्राम§ :

"आगे बढ़ो ... ।" डा० योगेन्द्र मेश्राम की एक दलित-विमर्श संपन्न कहानी है । कहानी संवादात्मक शैली में लिखी गयी है । कहीं-कहीं कविता शैली का भी प्रयोग किया है । यशवंत, पाण्डु, सदानंद, बिरजू, मियाँxxxxx, गंगा, सरमा §शर्मा§, सिद्धार्थ आदि लोगों के नाम कहानी में आये हैं । वस्तुतः देखा जाए तो कहानी की कोई बंधी-बंधाई कथावस्तु नहीं है । कथोपकथनों के माध्यम से समसामयिक सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं पर दृष्टिपात किया गया है । बाबासाहब का नाम और उनकी विचारधारा की बात कहानी में xxxxx स्थान-स्थान पर आयी है । कहानी में कहीं इस बात का भी संकेत xxxxx मिला है कि कुछ उपद्रवी लोगों ने बाबासाहब के स्टेच्यू की तोड़-फोड़ की है, उस पर डाँबर लगाया है । लेखक जगह-जगह पर इन लोगों के बारे में पात्रों के माध्यम से सार्थक टिप्पणियाँ करता है । यथा — "लेकिन नहीं, तुम्हारे दिखाने के दांत और खाने के दांत कुछ और हैं । तुम बोलोगे एक और करोगे दूसरा ही । नहीं भई नहीं । तुम्हारा कुछ भी सही नहीं । तुम लोग बहुत अच्छा राग अलापते हो लेकिन वह सिर्फ होठों से, अंतरमन से कदापि नहीं ।"[57] कहीं-कहीं समसामयिक दंगे-फसादों की भी बात है : "गुजरात और मराठवाड़ा में कैसे आलू-मूली सी आदमियों की काट-छाँट की गई । जैसे वे कोई भेड़-बकरियाँ हों,

सरेआम मार-काट हुई हुई थी । मिट्टी के तेल से मकानों को फूंक डाला गया था । बाप रे , बाप ! कितना अत्याचार किया गया था । अब उसकी याद करें तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं ।" 38

लेखक ने अछूत नेताओं को भी नहीं बख्शा है —" अपने नेता भी उसी धंधे के चट्टे-बट्टे हैं । दूसरों की क्या कहें अपने ही ये टिनपाट चौधरी सुलझाने बैठते हैं दाद , खाज , खुजली राजनीति की । और इसी बात से हम कमजोर हो जाते हैं ।" 39

कहानी में स्थान-स्थान पर बाबासाहब और उनके विचारों की चर्चा आती है , अतएव किसीको उसमें प्रचारात्मकता की बू भी आ सकती है । कहानी में कुछ लोगों की बन्दर-घुड़की के भी संकेत मिलते हैं । ये लोग दलित-सभाओं और समारोहों पर तोड़-फोड़ करते हैं । परंतु जब देखते हैं कि सामने दलित ×× भी मरने-मारने को उतारू हो गये हैं , तब वे भाग खड़े होते हैं । इस प्रकार लेखक यह व्यंजित करते हैं कि संगठन में बड़ी ताकत है और दलित-समाज को अपने हितों की रक्षा के लिए संगठित होना ही होगा , क्योंकि संगठित अत्याचार का सामना संगठित होकर ही कर सकते हैं । बौद्ध-धर्म में " संघं शरणं गच्छामि " की जो बात कही गयी है वह इसी संदर्भ में है । लेखक पात्रों के माध्यम से उन दलित-युवकों की भी निंदा करते हैं जो व्यर्थ का गालीगलौज और जूतमजूत स्टेज पर करते हैं :" एक तरफ हम कहते हैं की विचारों की लड़ाई विचारों से ही लड़ी जाए । और यह पढ़े-लिखे लौंडे जरा-जरा सी बात पर उधम मचाते रहते हैं । और अपना तमाशा सारे संसार को दिखाते हैं । किसीने कुछ गलत-सलत लिख भी दिया तो , तेरे में अगर दम हो तो अच्छा-सा लिखकर उस बात को झूठा साबित कर ।" 40

कहानी में सिद्धार्थ नामक एक पात्र है । वह कवि है । उसकी कविताओं के माध्यम से दलित-चेतना व्यक्त हुई है । यथा —

" किसीके रोके ना रुकेगा यह बहता पानी / यह पानी जो

है सिद्धार्थ की भाँति / उस प्रकाशमान पानी
ने / चवदार तालाब के पानी में से ही लगा दी आग ।"[51]

इस प्रकार कहानी दलित-चेतना, दलित-विमर्श और दलित-विद्रोह को रूपायित करती है । कहीं-कहीं गाली-गलौच की भाषा का प्रयोग उसके परिवेश के चलते स्वाभाविक ही कहा जायगा ।

(6) लोनेरी टोली की करामातें (जहांगीरखान) :

लद्दू, गट्टू, कल्लू और शंकर — ये चार लफरमुछिये दलित युवक । मस्त, फक्कड़, कलंदर टाईप के । खास पढ़े-लिखे हैं नहीं । गांव में ऊधम मचाना और मटरगश्ती करना उनका काम है । उनके मां-बाप उनको सुधारने के तमाम-तमाम प्रयत्न कर थके चुके हैं । पर इन पर कोई असर नहीं । गांव के लोगों ने इन चारों की टोली को नाम दे रखा है — "लोनेरी टोली" । गधों की सवारी गांठकर रात-बिरात ये कहीं भी निकल पड़ते हैं । उन्हें भूत-प्रेत-डाकिन किसीका डर नहीं, क्योंकि ये स्वयं किसी भूत-प्रेत से कम नहीं । मकाई के खेतों से भुट्टे चुराकर रात के समय श्मशान-भूमि में जाकर किसी जलते मुर्दे की चिता में गन्नों को भूनकर वे उसका "हुन्डा" बनाते हैं और फिर नमक और मिर्च के साथ खाते हैं ।

कहानी में दलित-विमर्श इस रूप में मिलता है कि ये चारों चाहे जितने ऊधमी हों, चोर-उचक्के, बदमाश क्यों नहीं हों, पर उनमें एक चेतना जागृत है ; वे अन्याय, अत्याचार और अंध-विश्वास को बरदाश्त नहीं करते और अपने तरीकों से उन्हें दूर करते हैं । गांव में पुलिस-पटेल का बड़ा आतंक था :
" पुलिस पटेल बहुत ही मगरूर किस्म का था । सभी ओर उसका दरारा था । उसके घर के काम को अगर किसी पिछड़ी जाति के आदमी ने इंकार कर दिया तो वह पहले उस आदमी को घर से बाहर लाकर पीटता था ।"[52] "धरती धन न अपना" के हरनामसिंह

की स्मृति जहन में कौंध जाती है । वतनदार और देशमुखशाही का जमाना था और पटेल के पाले हुए गुण्डे भी खूब लाठियाँ चलाते थे । "सोनेरी टोली वाले" उसको सबक सिखाना चाहते हैं । एक दिन मौका देखकर वे पटेल की गेहूं की गंजी में आग लगा देते हैं ।

बेरोजगारों को रोजगारी मिले इस हेतु से गाँव के तालाब का काम शुरू हुआ था । "टोली" वाले उसमें शामिल हो जाते हैं । उनके काम से मुकद्दम साहब भी खुश हैं । वहाँ उनका परिचय बाज्या नामक एक मजदूर से होता है । बाज्या की छोटी लड़की को बुखार आता है । सिला धनगर (ओझा) डनामाय की पूजा के लिये कहता है । " दो सेर का मुर्गा, एक नारियल, सवा रुपया, एक सेर चावल, कुंकुम, गुलाल, बुक्का, अगरबत्ती का पुड़ा "[५३४] ये सब लेकर रात को बारह बजे गाँव के बाहर डनामाय के थानक पहुँचना था । बाज्या ये सब लेकर पहुँच जाता है । सिला धनगर अपनी पूजा शुरू करता है । कुछ देर बाद चार भूत काले-काले छम-छम करते आते हैं । बाज्या और सिला धनगर मारे डर के भाग आते हैं । दूसरे दिन "टोली" वाले डाक्टर साहब को बुला लाते हैं जिनकी दवाई से बाज्या की लड़की ठीक हो जाती है । कहना न होगा यह काम भी "सोनेरी टोली" वालों का ही था ।

(7) गिद्ध / पद्मश्री स्व. दया पवार / X
==

अ " गिद्ध " दया पवार की एक सशक्त प्रतीकात्मक दलित-विमर्श को उकेरने वाली कहानी है । दो महीने के वैवाहिक जीवन के उपरांत लईबाई का आदमी गरदन-तोड़ बुखार में दम तोड़ देता है । कालरूपी गिद्ध का यह पहला झपट्टा था । लईबाई चाहती तो दूसरा ब्याह कर सकती थी । पर वह अपने आदमी को विवाह के पहले से चाहती थी । उनके प्रेम और मधुर-मिलन की कुछ झलकें भी लेखक ने दिखायी हैं । अतः लईबाई शेष जीवन अपने मरद की

यादों में ही बिता देती है । गुजर-बसर के लिए दस एकड़ जमीन है । उसके उपरांत वह "मुर्गी-पालन" का काम भी करती है । वह एक होशियार काबिल दायी भी हैं । गांव की बहुत-सी स्त्रियों की जचकी उनके ही हाथों हुई है ।

सगे-संबंधियों के नाम पर एक भतीजा है — कच्च्या । मरते समय उनके मरद के मुंह में पानी इसीने डाला था । पढ़-लिखकर वह बम्बई चला गया है । कभी-कभी सईबाई की खबर देखने और हाल-चाल जानने वह आ जाता है । उसके पीछे सईबाई की दस एकड़ जमीन भी कारणभूत है । खण्डू पटेल की भी नज़र उस जमीन पर है । एक दिन वह महार-बस्ती में आता है और इधर-उधर की दो-एक बातों के बाद मूल मुद्दे पर आता है :- "इसका मतलब तो यह हुआ कि खेती-बाड़ी इसी भतीजे के नाम करेगी । ... तो क्या इसे साथ बाँधकर ले जाऊँगी । बस आज तक संभालकर रखा । यही माँ-बाप की धरोहर है : ... अरे सईबाई ! ऐसा भी पागलपन क्या है ? तेरा भतीजा बम्बई में और तू इधर । तेरे हाथ-पांव जवाब दे गये तो वहाँ से कौन तेरी देखभाल करने आयेगा ? बुढ़ापे में अगर गांठ में पैसे हों तो अच्छा होता है । ... तेरा भतीजा लेकिन वैसा नहीं है । बेल से बेल लिपटती है । पानी कीचड़ और कीचड़ पानी नहीं छोड़ता , सबकी ऐसी गत हो गई है । .... सुन सईबाई ! मैं पूरे दस हजार देने को तैयार हूं । खूब सोच-विचार कर ले । नहीं तो बाद में पछतायेगी ।" [44]

खण्डू पटेल की बात से एक बार तो सईबाई के मन में ऊहापोह पैदा हो जाता है , परंतु अन्ततः जीत उसके अंतर्मन की होती है — "लेकिन बाप-दादा की जमीन ऐसे कैसे बेच दूं ? और भतीजे के मन को पीड़ा दी तो फिर मरते समय मुंह में जल कौन डालेगा ? सगे संबंधी कुत्ते-बिल्ली की भाँति कपड़े में लिपटकर फेंक देंगे । जान जाए तो जाए लेकिन खेती किसी गैर को नहीं बेचेगी , उसने मन ही मन

पक्का विचार कर लिया ।" [45]

दूसरे ही दिन मुंबई कच्प्या आ जाता है । सईबाई बड़ी प्रसन्न होती है । सईबाई उसकी बहू के बारें में पूछती है । कच्प्या बताता है कि वह भी नौकरी करती है और इस समय उसके पैर भारी है । सईबाई कहती है कि तब तो बेटा तुझे उसे ले आना चाहिए था , " कितनी ही गांववाली औरतों की जचगी मेरे हाथों हुई है । " [46] कच्प्या कहता है कि प्राइवेट अस्पताल में उसने उसका नाम दर्ज करवा दिया है । यहाँ लेखक ने कच्प्या के मन की बात को एक टिप्पणी द्वारा व्यक्त किया है — " वास्तव में देखा जाए तो ऐसे ग्रामीण माहौल में उसकी पढ़ी-लिखी बीवी एक पल भी रुक नहीं सकती , यह बात वह समझता है । " [47]

पर कच्प्या और उसका दोस्त बारबार जो "वसीयतनामा" की बात करते हैं उससे सईबाई कुछ शंकित -सी हो जाती है । वह पहले कच्प्या के माता-पिता की बरसी करवा लेना चाहती है , पर ये दोनों पहले "वसीयत" का काम निबटाना चाहते हैं । कहानी का अंतिम परिच्छेद बहुत ही करीने और कलात्मक ढंग से उकेरा गया है —" महारवाड़े को गांव-भोजन देने का सीधा-सा मतलब था कि दस एकड़ जमीन उसके {कच्प्या} हाथ आने वाली हैं । इतना सस्ता सौदा उसने आज तक नहीं किया था । उसकी आंखों के आगे दस एकड़ जमीन में लहलहाती गन्ने की फसल नाच रही थी । जबकि दूसरी ओर सईबाई का दिल डूबा जा रहा था । बहुत सब्र करने के बाद भी वह रो उठी । उसे साफ दिखाई दे रहा था कि उसकी जमीन हड़प ली जा रही है । कच्प्या , उसको भतीजा नहीं , कोई गिद्ध दिखाई देने लगा था । जो उसका सब कुछ छीन ले जाना चाहता थाx है । बुढ़ापे में हाथ-पांव जवाब दे जाते ही वह दर-दर की भीख मांगने जा रही है — और भीख मांगते हुए का दृश्य उसकी आंखों में समा जाता है ।" [48] गांव में जब सूखा पड़ा था तब गले की सोने की माला तक बिक गई मगर सईबाई ने सूखा राहत में

मिलनेवाली मदद नहीं ली थी । ऐसी स्वाभिमानी सईबाई को भीख माँगने की नौबत आनेवाली है, उसका संकेत कहानीकार ने दे दिया है । कहानी के प्रारंभ में एक दृश्य दिखाया है । एक बाज पक्षी झपट्टा मार-कर सईबाई का एक चूजा उठा ले जाता है । कहानी में प्रतीकात्मक ढंग से बताया गया है कि कल्प्या ही वह गिद्ध है । यह कहानी यह भी बताती है कि दलितों का शोषण उच्चवर्गीय लोग ही नहीं करते, बल्कि उनके अपने लोग भी करते हैं । दलित-वर्ग से जो लोग पढ़-लिखकर कुछ बन जाते हैं, वे भी इस शोषणलीला में शामिल हो जाते हैं । ओमप्रकाश वाल्मीकि की "अम्मा" कहानी में भी इसे चिह्नित किया गया है ।

§४§ मुरदे / गोपाल रेडगांवकर / :

रेडगांवकरजी की "मुरदे" कहानी संवेदना के तारों को झिंझोड़ने वाली एक सशक्त कहानी है । इस कहानी को पढ़कर मटियानीजी की "चील" कहानी स्मृति में कौंध जाती है । इस कहानी में दलितों के उस वर्ग को लिया गया है जिसे कदाचित हम अपने परंपरागत वर्ण-ढाँचे में रख ही नहीं सकते । निम्न से निम्नतम तबके का जीवन । इसमें मुंबई के भिखारियों के जीवन को यथार्थवादी शैली में लेखक ने प्रस्तुत किया है । सूरया और उसकी माँ भिखारी हैं । सूरया की माँ के साथ दमड्या नामक एक दूसरा भिखारी भी है । वह सूरया का बाप है या कोई और, कहानी में कहीं भी बताया नहीं गया है । किन्तु वह सूरया के प्रति और भी कठोर और निर्मम है, अतः बाप तो नहीं ही होगा ऐसा हम सोच सकते हैं । सूरया का एक दोस्त है सस्या । ये लोग जनाजों और अर्थियों पर जो पैसे फेंके जाते हैं उनको बटोर लाते हैं । जो खाना वगैरह फेंका जाता है वह भी खा जाते हैं । इस प्रकार मुर्दाजीवी ये लोग खुद भी मानो "मुरदे" ही हैं, यही लेखक को अभिप्रेत है । उनकी मानवीय चेतना मर चुकी है । सूरया की माँ रात को सूरया की जेब की तलाशी लेती है और उसकी चोर-

जेब से इकत्तीस पैसे निकाल लेती है । " मैं भी बिफरकर गाली दे देता माँ को । सामने पड़ा पत्थर उसकी खोपड़ी पर दे मारता लेकिन सामने दमड़िया बैठा था । " [49] वह अपने दोस्त सत्या से कहता है —" मुरया वह मेरी माँ नहीं है । उसकी तो माँ की ... उसने मेरे पैसे ले लिए ... उसके क्या भड़ुवे के बाप के थे ।"[50] इस प्रकार वह छोटा-सा बच्चा माँ-बहन की गालियाँ देता रहता है । दूसरे दिन कुछ पैसे बटोरते हैं तो गुण्डे-मवाली जबरदस्ती मार-कूट के छीनकर ले जाते हैं । माँ और दमड़िया को कोई धनिक मुरदा मिल गया था । कुछ जलेबियाँ बाँटी गई थी । जब सत्या और मुरया वहाँ पहुँचते हैं तब माँ कहती है कि कुछ पहले आते तो जलेबियाँ मिलतीं पर वह अपनी जलेबियों में से एक टुकड़ा भी सत्या को नहीं देती , बल्कि जल्दी-जल्दी वह "भकोसने " लगती है । सत्या को भारी वितृष्णा होने लगती है । एक दृश्य देखिए : "पत्तल पर किसीने भात रखा था , लेकिन इनको तो माँ की ये कौव्वे पत्तल पर टूट पड़े । ऐसा भात कौन खाये ? मेरी माँ ने खा लिया होता । उसकी भात खाने की इच्छा थी ।"[51] कहानी का अंतिम दृश्य :" मैंने फिर मुड़कर देखा । तीन आदमी जा रहे थे । एक हाथ में लाल रंग के कपड़े में लिपटा हुआ छोटा बच्चे का मुर्दा था । मैंने मुरया से कहा , " तू चना खायेगा ? चल ... ।"[52] गोया मुरदे उनके लिए मुरदे नहीं भात , रोटी , चने , जलेबी और पैसे होते हैं । प्रेमचंद की कहानी "कफ़न" के माधव और घीसू के व्यवहार पर आश्चर्य प्रकट करने वालों को यह कहानी जरूर पढ़नी चाहिए । भीषण , भयंकर , दरिद्रता और भुखमरी का यह आलम देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं । सचमुच में मनुष्य बुरा नहीं होता , बुरी होती है भूख ।

(9) गुजर-बसर : / योगिराज वाघमारे / : वाघमारे जी की
==================================

यह कहानी " गुजर-बसर " भी "मुरदे" की ~~अक्ष~~ भाँति ही बड़ी

ही लोमहर्षक है । भयंकर दुर्भिक्ष की स्थिति है । गांव के गांव खाली हो रहे हैं । लोग भूखों मर रहे हैं । अब गांव में वे ही लोग रह गए हैं जो अन्यत्र जा नहीं सकते । धुरपा और संभा औरत-आदमी हैं । चार-चार बच्चे और घर में अनाज का एक दाना भी नहीं है । बच्चों के पेट में चार दिनों से अन्न का एक दाना तक नहीं गया है । संभा का चाचा शिवभाऊ पखवाड़े पहले ही चल बसा था । "कि शवदाह के लिए ईंधन नहीं था, सो पहले से ही खुदे हुए गड्ढे में लाश को धकेल कर उस पर मिट्टी डाल दी गई थी । "शिवभाऊ की मृत्यु भी भूख से छटपटाकर ही हुई थी । ऐसे में धुरपा कहीं से खबर ले आती है कि मुनुल उटिक मरे हुए जानवरों की हड्डियां लेता है । संभा कहता है — "बड़ा अच्छा हुआ प्रभु ! खाड़ ही सही । वही जमा करेंगे ! ... जानवरों की हड्डियां ? आदमी की ... ? संभा का सिर भन्नाने लगा ! हाँ ... आदमी की हड्डियां ... और उसे अपने चाचा की याद आई ।"[54]

और रात को धुरपा और संभा वहीं पहुँच जाते हैं । श्मशान भूमि, कुछ डर लगता है, पर भूख ने डर को भी भगा दिया है । पहले कोई सियार आता है । धुरपा के कपड़े खराब हो जाते हैं । फिर वहाँ एक दूसरा आदमी भिवाँ भी आ धमकता है । पहले तो वे लोग उसे भूत समझ बैठते हैं । भिवाँ भी उसी मकसद से आया था । चचा की कब्र पर उसने भी निशानी लगायी थी । चाचा की हड्डियों को लेकर दोनों में विवाद होता है । आखिर संभा कहता है — "छोड़ जाने दे भिवा । यह झगड़े का वक्त नहीं । वक्त गाढ़ा है ... हम दोनों खोदेंगे ... आधी हड्डियां तू रख लेना आधी मैं । आधा निवाला तेरा आधा मेरा । जिस दिन कुछ नहीं रहेगा वैसे ही मरेंगे लेकिन आज ..."[55] और कहानी का अंत : "संभा ने अपने चाचा के अस्थि-पंजर को दो जगहों से बराबर-बराबर किया । किसीके हिस्से में नाखून भर भी हड्डी ज्यादा नहीं पड़ी । रात खर्राटे भर रही थी । नाले का किनारा

बेहोश पड़ा था । टिटहरी चीख रही थी और संभा, भिका, धुरपा टोकनी में अपनी गुजर-बसर के लिए हड्डियां लेकर घर की ओर लौट चले थे ।"56

यहां लेखक ने उस भयंकर, भीषण, नारकीय दुर्भिक्ष का चित्रण किया है जो मनुष्य को भी अमानवीय व्यवहारों के लिए विवश कर देता है । संभा बिलकुल सही कहता है : "वक्त गांडू है ।" पर हमें यहां जो बात कहनी है वह यह कि कुदरत का कहर जब भी बरपा होता है, वह गरीबों पर ही टूट पड़ता है । अकाल हो, चाहे बाढ़ हो, गरमी या जाड़े का प्रकोप हो, मरता हमेशा गरीब ही है और गरीबी का प्रमाण सबसे ज्यादा दलितों में है । हमारे कहने का अभिप्राय यह कतई नहीं कि दूसरे तबकों में गरीबी नहीं होती, होती है, पर गुणात्मक दृष्टि से बहुत कम होती है । और एक बात कई बार तथाकथित उच्च वर्णीय लोग तो ऐसी प्राकृतिक आपदाओं को भी अपने हक में भुना लेते हैं । यशपाल की "दानवीर" कहानी यहां उदाहरणीय है ।

§10§ सांग / जयप्रकाश कर्दम / :

"सांग" वस्तुतः "स्वांग" का अपभ्रष्ट रूप है । गांवों में खेल-तमाशा करने के लिए नाटक-मंडलियां आती हैं, उन्हीं को "सांग" कहा गया है । अब तो टी.वी. का जमाना आ गया है । पर पुराने समय में ये नाट्य-मंडलियां ही ग्रामीण लोगों का मनोरंजन करती थीं । बंगाल में "जात्रा", "मध्यप्रदेश में "माच", गुजरात में "भवाई", यू.पी. में रामलीला-कृष्णलीला, महाराष्ट्र में "तमाशा" आदि इन लोक-नाट्यों के प्रकार थे और सामान्य ग्रामीण जनता इनसे खूब लुत्फ उठाती थीं । जिस प्रकार कुछ खाते-पीते लोग सर्दियों में कुछ मेवा-मिष्टान्न खाकर साल भर के लिए

स्वास्थ्य चंगा रखने का इन्तजाम कर लेते हैं, ठीक इसी प्रकार ये "सांग-मंडलियां" महाराष्ट्र के गरीब-ग्रामीण लोगों को मनोरंजन कराके उनका मानसिक "स्वास्थ्य-लाभ" कराती थीं।

"सांग" की कहानी इस प्रकार है — गांव में "सांग-मंडली" आयी है। गांव-भर के गरीब-मेहनतकश तबके में बड़ा उत्साह है। लोग-बाग जल्दी-जल्दी अपना काम निबटाकर "सांग" देखने की तैयारी कर रहे हैं। शीला और चम्पा भी गरीब तबके के मजदूरी करने वाले दलित लोग हैं। शीला अपना काम पूरा करके चम्पा को बुलाने जाती है, पर चम्पा में "सांग" को लेकर कोई खास उत्साह नहीं है। पूरा सोनपुर गांव उत्साह की हिलोरें ले रहा है, उदास और भावुक है तो केवल चम्पा। चम्पा में "सांग" के लिए कोई उत्साह नहीं है, उसका कारण है। आठ साल पहले इसी तरह "सांग मंडली-" आयी थी और चम्पा का मरद भुल्लन बुखार से पीड़ित था। भुल्लन "सांग" का बड़ा रसिया था और दो-चार कोस चलके भी "सांग" देखने जरूर जाता था। उस दिन भुल्लन मुखिया के काम पर भी नहीं गया था। खेतों में पानी "चलाने" का काम था। भुल्लन ने वैद्य से कोई औषधि ली थी और उसे थोड़ा-सा करार आ रहा था, सो घड़ी-भर जी बिलमाने के लिए "सांग" देखने चला गया। दूसरे दिन मुखिया अपने लठैतों के साथ भुल्लन को पुकार रहे थे — " अबे ओ भुल्लन, अबे कहां है देहा!"[57] वे लोग भुल्लन को बाहर खींच लाकर उसकी इतनी पिटाई करते हैं कि चम्पा की लाख सेवा-सुश्रुषा के बावजूद वह अंततः दम तोड़ देता है। आज चम्पा को भी मुखिया के खेतोंxमें पानी निराने जाना था, पर उसकी भी तबियत अच्छी नहीं थी। वह भी मुखिया के काम पर नहीं गयी थी। यही कारण है कि वह शीला को मना कर देती है। पर अचानक चम्पा की आँखों में एक चमक-सी आती है और वह "सांग" देखने चल पड़ती है, इतना ही नहीं दो रुपये देकर अपने नाम की "छाप" भी लगवाती है। दूसरे दिन हस्बेमामूल मुखिया

और उसके गुण्डे हाजिर । " कहाँ गई वह रांड , बाहर निकल चुड़ैल ।" मुखिया ने जवाब तलब किया :

"बोल हरामजादी , कल खेत में नलाई करने क्यों नहीं गयी थी ? " क्रोध से पूछा मुखिया ने ।

"मेरी तबियत ठीक नहीं थी । " बोली चम्पा ।

"तबियत ठीक नहीं थी , झूठ बोलती है कुतिया । फिर सांग देखने कैसे चली गयी थी तू ? ऐं बोल ... " और कहने के साथ चम्पा की ओर हाथ बढ़ाया मुखिया ने ।

लेकिन इससे पहले कि मुखिया का हाथ चम्पा तक पहुंचता , ओढ़ने में से गण्डासा पकड़े चम्पा के हाथ बाहर निकले और अगले ही क्षण मुखिया का सिर दो फांक हो गया ।"58

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता " बस्स । बहुत हो चुका " स्मृति में कौंध xxxxxxxx जाती है । शायद चम्पा ने भी कहा होगा — xxxxx "बस्स । बहुत हो चुका " — और इस प्रकार वह अपने मृत पति की आत्मा का "तर्पण" करती है । कैसा संयोग कि उस दिन "सांग" में "सत्यवान-सावित्री " का ही खेला था ।

§11§ छूत कर दिया / सूरजपाल चौहान / :

अस्पृश्यता की समस्या पर सूरजपाल चौहान की एक सशक्त कलात्मक कहानी है — "छूत कर दिया " । लेखक और बिहारीलाल केन बचपन के दोस्त हैं । लेखक लिख-पढ़कर दिल्ली आ जाते हैं । बिहारीलाल के पिता अंग्रेजों के जमाने के आठवीं पास व्यक्ति थे । अतः रेल्वे में नौकरी करते हैं । नौकरी के कारण बिहारीलाल को भी मुंबई जाना पड़ता है । ये दोनों मिश ईसाई मिशनरियों के कारण ही गांव में शिक्षा की ओर उन्मुख हुए थे । पाबूलाल मसीह गांवों के दलितों में शिक्षा का प्रचार कर रहे थे । उन्हीं की प्रेरणा से ये मिश पढ़ते हैं । मां की मृत्यु के बाद लेखक को अपने पिताजी के साथ दिल्ली जाना पड़ता है । बिहारीलाल अपने

पिता टीकाराम के साथ मुंबई चला जाता है और पढ़-लिखकर आई. ए.एस. कर लेता है । पचीस साल बाद ये दोनों मित्र अपने गाँव में अकस्मात मिल जाते हैं । पुरानी स्मृतियों की जुगाली चलती है । ग्राम-प्रधान को बिहारीलाल का आई.ए.एस. होना अच्छा तो नहीं लगता , पर क्या करें ? राजनीति की लाचारदर्जी ? और फिर चुनाव आ रहे थे । अतः मन मारकर ग्राम-प्रधान बिहारीलाल को मिलने चले जाते हैं । गाँव में रामलीला होने वाली थी । प्रधान रामलीला के चंदे के बहाने से बिहारीलाल को मिलते हैं । बिहारीलाल अपने बटुए से पाँच सौ एक रुपये निकालकर दे देता है । और अपनी माँ को आदेश देता है कि — " अम्मा चूल्हे पर चाय बनादे कुं धर दे । प्रधान साहब आज चलि के हमारे घर आये हैं । "[59] पर चाय की बात चलते ही कमेटी सदस्यों के मुंह ऐसे बिचक जाते हैं मानों चाय की जगह पाखाने की बात की हो । प्रधान गुलाबचंद स्थिति को किसी तरह संभाल लेते हैं । पर प्रधानजी को हरिजन वोटों का ऐसा बुखार चढ़ता है कि अपनी भाषणबाजी की धौंस में रामलीला में वे ऐलान कर बैठते हैं — " भाइयों , अब मैं बिहारीलाल से अनुरोध करता हूँ कि वह भगवान राम का तिलक कर उनसे आशीर्वाद प्राप्त करें । "[60] राम बना पात्र पहले तो मंच पर आने को तैयार नहीं था , परंतु बाद में बहुत समझाने पर मंच पर आया , पर जैसे ही बिहारीलाल ने राम बने पात्र को तिलक करने अपना हाथ बढ़ाया कि वह पीछे की ओर हटकर चिल्लाया — "अरे चमार के क्या छूत करेगा ?"[61] बिहारी के पैरों तले की जमीन खिसक गई । गुस्से से उसका चेहरा लाल हो गया । उसका हाथ जो तिलक करने के लिए आगे बढ़ा था उसने मुक्के का रूप ले लिया । बिहारीलाल ने अपनी पूरी ताकत से मुक्का उसके मुंह पर दे मारा । रामलीला में अफरातफरी मच गई । गाँव के सभी दलित व पिछड़े दौड़कर अपने-अपने घरों से बल्लम-लाठियां उठा लाये । उन्होंने एक स्वर में गाँव के सवर्णों को ललकारते हुए कहा — " यदि बिहारीलाल को छू भर भी दिया तो पूरे गाँव की ईंट से ईंट बजा दी जायेगी ।

समय की नज़ाकत को देख रामलीला कमेटी और तथाकथित सदस्य एक-एक करके वहां से खिसक गये । उसके बाद गांव के दलित प्रधान को धिक्कारते हुए कहते हैं — " क्यों ग्राम-प्रधान , तुम्हें या रामलीला कमेटी के सदस्यों थोड़े को बिहारीजी से रुपया लेते लाज न आई ? रुपया भी तो बिहारी ने अपनी जेब से निकालकर अपने हाथों से ही दिया था । तब तुम्हें छूत नहीं लगी ?" [63] कहानी का अंतिम वाक्य है — " ग्राम-प्रधान गुलाबचंद नीची गर्दन किए पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदे जा रहा था ।" [64]

यह जो अंतर आया है , वह शिक्षा और संगठन के कारण है । अन्यथा क्या कोई दलित कल्पना कर सकता है कि ग्राम-प्रधान यों अपमानित व लज्जित होकर जमीन कुरेदे ? लेखक यही चेतना जगाना चाहता है ।

[12] परनाम नेताजनजी / रमणिका गुप्ता / :

"परनाम नेताजनजी" डा. रमणिका गुप्ता की एक दलित-चेतना संपन्न कहानी है । आर्थिक सक्षमता और शिक्षा से क्या फर्क पड़ता है , उसे हम ऊपर की कहानी में लक्षित कर चुके हैं । यहां भी उसी बात को एक दूसरे अंदाज में हम देख सकते हैं । गांव के दलित लोगों को जबसे सिरका में लोडिंग का काम मिलता है , उनकी आर्थिक स्थिति में काफी सुधार आने लगता है । एक-एक मजदूर दिन में तीस-चालीस रुपया कमा लेता था । अतः उन लोगों की गांवके बड़े लोगों पर की निर्भरता कम होने लगती है और उसी मात्रा में उनका दब्बूपना भी दूर होता जाता है । यह बात गांव के जमींदारों को खटकती है । जब सुंदरसिंह वकील [यह एक लड़के का नाम है , वह शहर में पढ़ रहा है , इसीलिए सब लोग उसे वकील कहते हैं ।] की मां को पुकारता हुआ उसके घर में घुस जाता है तब

वह खटिया पर बैठे-बैठे ही बात करती है और वकील ने खड़े होकर सलाम नहीं किया । इस बात को लेकर कुंदरसिंह वकील की माँ को कहता है — " अच्छा तो तुम लोग इहाँ तक पहुंच गये हो — खटिया पर बैठे-बैठे बतियाते हो । कपड़े का घर क्या तान लिया कि हमारी बरोबरी करे लगे हो । लौंड़ा के स्कूल पढ़ा के कलट्टर बनाएगी । घमाइन आखिर तो हमरा दिया खाती हो — बच्चे ही जनाओगी न हमारे घरों में । हमराई खेत जोतेगा तेरा बेटा भी । इतना गुमान मत मान । नोकिंग की कमाई ज्यादा दिन नाव चलते ।" 65

और उसी रात उनकी बस्ती में आग लगाई गई थी । वकील की माँ तब समझ जाती है । दार-फरियाद जो करती है वह तो करते ही हैं । ऊपर से दबाव आता है तो पुलिस को भी हरकत में आना पड़ता है । पर इस घटना से एक बहुत बड़ा परिवर्तन उन लोगों के जीवन में आता है । ये लोग वकील की माँ की अगुवाई में फैसला करते हैं — " कोई औरत चमार टोला से बाबू साहब के घर बच्चा जनाने नहीं जायेगी । कोई भी मर्द या औरत बाबू साहब के खेत में नहीं खटेगा । काम नहीं मिलेगा तो हजारीबाग, पटना, कलकत्ता चला जायेगा — वहाँ रिक्शा चलायेगा — बर्तन मलेगा ।" 66

और इसके कारण गाँव के बाबू लोगों की हालत खस्ता हो जाती है । उनके खेत परती पड़े रहते हैं । मजदूर मिलते नहीं है । बाबुओं और बबुआइनों से खेत के काम तो सधते नहीं । फलतः वे कर्जदार होते जाते हैं । अपनी जमीनें बेचने लगे हैं । चीतन बाबू को जमीन बेचनी पड़ी । बेटी के ब्याह के समय सबसे ज्यादा दाम बलदेवराम दुसाध देने को तैयार हुआ । बलदेव का दो-मंजिला मकान अब बाबू टोले में "शान से उनकी सामंती हेकड़ी और आर्यजातीय अहम् और दंभ को मुंह चिढ़ाता खड़ा था । " 67

कहानी इन वाक्यों के साथ खत्म होती है — "वकील कालेज में पढ़ रहा था । वकील की माँ अभी भी लौंडिंग करती ही थी । पर अब वह राजपूत टोले से गुजरती तो बहुत-से बाबू लोग झुक कर कहते थे — "परनाम नेताइनजी ।" ... और वह आदत के अनुसार कहती, "सुख से रहो ।"" 60

इस तरह डा. रमणिका गुप्ता यह प्रस्थापित करती कि आर्थिक सहरता और आत्म-निर्भरता ही दलितों की चेतना में प्राण फूंक सकती है । एक बार दलित अगर अपनी संगठन-शक्ति को पहचान लें तो पुराने सामाजिक समीकरण उलट सकते है ।

{13} सुरंग : / डा. श्यामनंद बटोही / :

इस कहानी में डा. बटोही तथाकथित ऊंची जाति के लोगों की नीचता को उद्घाटित करते हैं । ऊंची जाति के बहुत-से लड़के-लड़कियां एम.ए. और एम.एस.सी. में थर्ड डिविज़न के बावजूद पी-एच.डी. कर रहे हैं और डा. विष्णु जो हिन्दी के विभागाध्यक्ष है कथा-नायक को उसमें प्रवेश देने से मना कर देते हैं । डा. सुखदेव , डा. पारसनाथ आदि विभाग के दूसरे प्राध्यापक भी डा. विष्णु के सुर में सुर मिलाते है । यहां तक कि वाइस चान्सेलर महोदय भी डा. विष्णु को प्रवेश देने के लिए सहमत हो जाते हैं , तब वे कोई और बहाना करके टालमटोल करते हैं । आखिरकार कथा-नायक छात्र-नेताओं को अपनी बात कहता है । नेताओं को भी पिछड़े छात्रों के वोट चाहिए थे , अतः कथा-नायक का व्यक्तिगत संघर्ष अब छात्रों के आंदोलन का रूप अख्तियार कर लेता है । विभागाध्यक्ष का घेराव किया जाता है और

अन्ततः उसे छात्र-शक्ति के सामने घुटने टेकने पड़ते हैं । कथा नायक डा. अवस्थी के निर्देशन में "हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य-कारों का योगदान " विषय पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त करता है और कहानी के अंत में यह संकेत दिया है कि वह किसी कालेज में हिन्दी का व्याख्याता हो जाता है और अब विश्वविद्यालय में साक्षात्कार के लिए आया है । कथा-नायक की पुस्तक "सुरंग" पर अच्छी आलोचनाएं आती हैं , शायद कइयों को पता नहीं है कि "सुरंग" का लेखक कोई दलित-चमार है । 69

§14§ लटकी हुई शर्त / प्रहलादचन्द दास / :

"लटकी हुई शर्त " प्रहलादचन्द दास की दलित-चेतना संपन्न कहानी है । इधर पढ़ने-लिखने तथा नौकरियों के कारण दलितों की आर्थिक स्थिति में जो सुधार आ रहा है और उसके कारण उनमें जो बदलाव आ रहा है उसे यह कहानी रेखांकित करती है । गुरु गंगाराम एक गरीब दुसाध का लड़का है । उसका बाप रामकिशन बाबू के यहाँ घोड़ों के अस्तबल में काम करता था और वहीं करते-करते मरा । बचपन में दूसरे बच्चे गंगाराम को "गंगाराम नंगाराम " कहकर चिढ़ाते थे । बचपन में गंगाराम "पेटू" किस्म का था । अच्छा खाना कभी-कभार नसीब होता था । और तब वह खाने पर टूट पड़ता था । रामकिशन बाबू के यहाँ से तो हरखू उसे हाथ पकड़कर पंगत से उठाता है ।70 पर वही गंगाराम के आजकल ठाठ है । उसके दोनों बेटे — मनु और शिवचरण — को सरकार में नौकरी मिल जाती है और गंगाराम उनकी तनख्वाहों से गांव के बाबू लोगों की जमीनें खरीदता जाता है । सूद पर पैसा चलाता है और कुछ बरसों में तो गांव में "गंगाराम गंगाराम" हो जाता है । xxxxx रामकिशन बाबू की बेटी की शादी

है । सब पासी , दुसाध , चमार , अहीर को खाने का न्यौता मिलता है । पर गंगाराम रामकिशन बाबू के सामने शर्त रखता है कि कोई भी दलित खाने बाद अपनी पत्तल अपने आप नहीं उठायेगा जब खाने पर "नेउतते" हैं तो दूसरे लोगों जैसा व्यवहार उनके साथ भी होना चाहिए । गांव के बाबुओं को यह मान्य नहीं अतः गंगाराम अपने सभी भाइयों को अपने यहां खाने पर न्यौतता है । जब भी गांव के बबुआन में कहीं शादी होती है तो उनके यहां खाने के लिए कोई नहीं जाता । उस दिन सब गंगाराम के यहां पहुंचते हैं और गंगाराम की यह शर्त अभी तक तो "लटकी" हुई है । कुछ लोग व्यंग्य में कहते भी हैं — " एक कोइरिन थी , रानी बन गयी तो बैंगन को टैंगन कहने लगी ।" 7।

§15§ अपना गांव / मोहनदास नैमिशराय / :

यह डा. मोहनदास नैमिशराय की एक दलित-विमर्शयुक्त कहानी है । इसमें "महना" नामक एक बहुत ही पिछड़े और दूर-दराज के गांव की कहानी है । गांव जाने के लिए कोई पक्की सड़क नहीं है । थाने जाना हो तो आठ मील चलकर जाना पड़ता है । गांव में दो प्रकार के वर्ग है — अगड़ी जातियां और पिछड़ी जातियां । अगड़ी जातियों में बामन , बनिया , ठाकुर , राजपूत आदि जातियां आती हैं , और इनके साथ जाट , त्यागी , यादव , गूजर , कायस्थ और कुर्मी जैसी कुछ बीच की पर लड़ायक जातियां जुड़ गई हैं । इनके बलबूते पर ये लोग पिछड़ी जातियों के लोगों पर जुल्म करते हैं । पिछड़ी जातियों में चमार , चामड़ , वाल्मीकि , खटीक , सैनी , तेली , नाई , कुम्हार , जुलाहे , धटकुने और मनियार आते

है ।[72] अगड़ी जातियों के लोग इन पिछड़ी जातियों पर तरह-तरह के जुल्म करते हैं । सदियों से यह होता आया है । पिछड़ी जातियों की स्त्रियों को ठाकुरों के घरों में और खेतों में काम करने के लिए जाना पड़ता है, इतना ही नहीं, उनके साथ सोना भी पड़ता है । राजी-राजी गैरराजी यह सब करना पड़ता है । इसलिए ये लोग अपनी बेटियों की जल्दी से शादी करके उनको उनकी ससुराल भेज देते हैं । अब वहाँ उनका क्या होता है वह गाँव पर निर्भर करता है । यदि "लहना" जैसा गाँव हो तो उनको भी इन यंत्रणाओं से गुजरना पड़ता होगा । लोग "भुरदे" से हैं । उनमें कोई चेतना नहीं है । ये जुल्म, अन्याय, अत्याचार मानो उनको रास आ गया है । कुछ औरतों को तो शायद यह पसंद भी है । एक औरत अपने को जमींदार की आधी घरवाली कहलवाने में गौरव का अनुभव करती है ।[73] हरिया गाँव का सबसे बूढ़ा आदमी है । उसका पोता धमारों में सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा माना जाता है, वह दसवीं पास है । संपत उसका नाम है । गाँव के जमींदार से पाँच सौ रुपये का कर्ज लेकर वह शहर में नौकरी ढूंढने गया है । अभी तीन साल पहले उसकी शादी हुई है । नाम तो उसका छमिया है पर लोग प्यार में उसको छबतरी कहते हैं । जमींदार के गंदले बेटे की उस पर कई दिनों से नज़र थी । वह छमिया पर संदेश भिजवाता है कि उसका पति पाँच सौ रुपया कर्ज ले गया है, उसके एवज में उसे उनके खेतों में काम के लिए आना होगा । खेतों में काम पर जाने का क्या मतलब होता है, गाँव के सभी लोग जानते हैं । छमिया दो-तीन दिन तो ना-नुकुर करती है, पर एक दिन जंगल में जब वह लकड़ियाँ इकट्ठा कर रही थी, जमींदार का वह गंदला लड़का अपने कारिन्दों के साथ आ धमकता है । वे लोग उसको आपाद-मस्तक चिलमनंगी कर देते हैं । वह बैठ जाती है तो उसे गाँव की ओर भगाने के लिए उसके गुप्तांग में लकड़ी

से छेड़छाड़ की जाती है। आखिर लाचार हो उसे भागना पड़ता है। वे लोग उसको पूरे गांव में नंगी घुमाते हैं। सबको जैसे सांप सूंघ जाता है। हरिया के यहां दो-तीन दिन तक चूल्हा नहीं जलता पूरे गांव को बुरा लगता है। पर जमींदार के सामने बोलने की किसी में हिम्मत नहीं है। खबर अखबार में छपती है। उसे पढ़कर संपत आता है। संपत थाने में रपट लिखवाने की बात करता है। पहले तो लोग विरोध करते हैं। पर जब हरिया भी संपत की बात पर सहमती जताता है तब गांव के आठ-दस लोग मिलकर थाने पहुंचते हैं। उसमें छमिया के अलावा दूसरी भी दो हिम्मतवान औरतें होती हैं। परन्तु थाने का दारोगा उनका रिपोर्ट लिखने से धरार मना कर देता है, बल्कि गालियां देता है और उनकी बुरी तरह से पिटाई करता है। वे बेचारे अपमानित होकर अपना-सा मुंह लेकर आ जाते हैं। शहर से एक लड़का और एक लड़की इस खबर की रिपोर्टिंग के लिए आते हैं, पर आखिर-कार वे भी हवेली के मेहमान होते हैं। अन्ततः पंचायत होती है। उन्हीं लोगों की पंचायत। तरह-तरह की बातें लोग करते हैं। आखिर हरिया प्रस्ताव रखता है कि गांव की सारी पिछड़ी बस्ती उस गांव को ही ही छोड़ दें और दूसरा नया गांव बसायें। तब अपना-अपना सामान औनेपौने दामों में बेचकर गांव को छोड़ देते हैं और वहां से कुछ मील की दूरी पर दूसरा गांव बसाते हैं और वहां उन सबको ईंटों के भट्ठे पर दूसरा काम मिल जाता है। उसका मालिक कोई रहमतअली नामक मुसलमान है। इस प्रकार कहानी का अन्त कुछ अस्वाभाविक-सा लगता है, परंतु यदि उसका प्रतीकात्मक अर्थ लगावें कि दलितों को अपना अलग देश बसाना चाहिए, यदि यहां उनके अधिकारों और मान-सम्मान की कदर नहीं होती है। तब कुछ बात बराबर जमती है।

कुछ दलितेतर लेखकों की कहानियाँ :

उक्त दलित लेखकों के अलावा यहाँ कुछ दलितेतर लेखकों की दलित-विमर्श की कहानियों पर बहुत संक्षेप में विचार किया जायेगा। इन कहानियों में एक और अन्त" (अभयकुमार सिन्हा) , " एक और सीता " (~~[illegible]~~ आलमशाह खान) , "आदमी" (आशिष सिन्हा) , " अस्वीकृति" (गिरिराजशरण अग्रवाल) , "सड़क" (जगदीश दीक्षित) , " आषाढ़ का एक दिन" (जवाहर सिंह) , "कमीज" (नरेन्द्र मौर्य) , " कामरेड का सपना" (बलिराम) , " उठे हुए हाथ " (मधुकर गंगाधर) , " हरिजन सेवक " (मधुकर सिंह) , पन्नाधाय का दूसरा बेटा (रघुनाथ प्यासा) , " बयान" (रमाकान्त) , "अयोध्याकांड " (रमेश-चन्द्र शाह) , "सर्पदंश " (डा. रामदरश मिश्र) , "रम्मू की कहानी (रामहरेश) , "खाली झोली भरे हाथ " (शशिप्रभा शास्त्री) व. "बिच्छूघात (श्रीविलास डबराल) " छिपे हुए हाथ " (सच्चिदानंद धूमकेतु) आदि मुख्य हैं।

" एक और अंत " अन्तर्जातीय विवाह पर आधारित कहानी है। उसका नायक हुनरा रिक्शा चलाता है। वैसे तो वह भी छोटी जाति का है, परंतु वह सुमनी नामक चमारिन से भगाकर शादी कर लेता है। हुनरा के माँ-बाप नहीं है। एक मौसी ने पाल-पोसकर उसे बड़ा किया था। मौसी सुमनी को पसंद नहीं करती है और उसके साथ छुआछूत का भेद रखती है। सुमनी एक बच्चे को जन्म देकर मर जाती है। मौसी उस बच्चे के साथ भी ऐसा ही व्यवहार करती है। अतः एक दिन वह बच्चा भी कहीं चला जाता है। इस प्रकार जातिगत भेदभाव और छुआछूत के दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं।

"एक और सीता" में बड़ी जाति के लोग छोटी जाति के लोगों की स्त्रियों का जो यौन-शोषण करते हैं उस बात को लिया गया है। उसमें एक ठाकुर अपने उपभोग के लिए रमिया नामक उसके बंधुआ नौकर की शादी सीती चमारिन से करवाता है। ठाकुर सीती को पहले ही चाहता था, अतः शादी के बाद रमिया तो एक तरफ रह जाता है, ठाकुर ही उसका उपभोग करता है। परन्तु जब रमिया मर जाता है तब सीती कहती है कि अभी तक मुझे मेरा सुहाग रमिया का था और वह उससे लुटवाया पर अब मैं स्वतंत्र हूँ और अब मैं तुमको अपनी लाज लुटने नहीं दूंगी।

"आदमी" कहानी में जंगलों के ठेकेदार और जंगलबाबू आदिवासी लोगों का शोषण करते हैं। उसमें कारिया ओरव नामक एक आदिवासी लड़का सानो नामक लड़की को प्यार करता है, पर ठेकेदार और जंगलबाबू मिलकर उसका बलात्कार करते हैं। इस प्रकार यह कहानी आदिवासी स्त्रियों और लड़कियों के यौन शोषण पर प्रकाश डालती है।

"अस्वीकृ× "अस्वीकृति" नामक कहानी में एक अध्यापक विक्रम नामक एक आदिवासी लड़के को आश्रय देता है। उसे पढ़ाता-लिखाता है और वह आई.ए.एस. भी हो जाता है। परंतु जब वह अपने अध्यापक की पुत्री नेहा का हाथ माँगता है, तब वह उसके प्रस्ताव को ठुकरा देता है। विक्रम नेहा को चाहता था। इस प्रकार कहानी में यह स्पष्ट होता है कि आदमी बाहर से कुछ भी करे, सुधारक होने का दावा करे, पर उसके भीतर जो जातिभेद के संस्कार होते हैं उनको वह मिटा नहीं सकता।

"सड़क" कहानी में ठाकुर हरदेवसिंह सस्ते में सड़क बनवाने के लिए चमारों के खलिहानों में आग लगवा देता है। खलिहानों के जल जाने के कारण चमार मजदूरी के लिए राजी हो

जाते हैं और सड़क बन जाती है, परन्तु बाद में जब चमारों को पता चलता है कि सड़क का ठेका जमींदार के लड़के ने लिया था और इसलिए उसीने कलिहानों में आग लगायी थी, तब एक रात के समय जाकर वे सड़क को खोद डालते हैं।

"आषाढ़ का एक दिन" नामक कहानी में सरकार के कायदे-कानून कैसे पोथियों और कागजों पर ही रह जाते हैं उसका यथार्थ चित्रण लेखक करते हैं। वहाँ तो जमीन उन गरीबों के नाम होने वाली थी और उसमें वे उगने-खाने भी नहीं जा सकते थे। मगेलु नामक युवक कई दिनों का भूखा है, रात में शकरकंद उखाड़ने अपने ही खेत में जाता है तब ठाकुर गोली मारकर उसकी हत्या कर देता है।

"कमीज" कहानी का रामा बाढ़ के कारण पानी में डूब जाता है। वस्तुतः वह ठाकुर की भैंस को लेने ही बाढ़ के पानी में जाता है, क्योंकि उसे ठाकुर का बड़ा डर था और उस डर के कारण ही वह अपनी जान गँवा बैठता है। ठाकुर सहानुभूति-वश कुछ अनाज और एक कमीज देता है। दूसरी बार ऐसी ही बाढ़ जब आती है तब वह छोटा बच्चा कहता है कि आज फिर घर में एक कमीज आयेगी।

"कामरेड का सपना" कहानी का कामरेड दलितों के अधिकारों के लिए लड़ने वाला एक जुझारू नेता था। किन्तु तरुण ठाकुर उसकी हत्या करवा देता है। अतः कामरेड की लड़की चन्द्रावती कामरेड का सपना पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध होती है। उसे एक अन्य कामरेड जिसका नाम रघुनंदन था उसका साथ मिलता है।

"उठे हुए हाथ" में साथी मेहतो बसन्ती चमारिन का बलात्कार करता है। उसके फलस्वरूप वह गर्भवती होती है और एक बेटे को जन्म देती है। बाद में बसन्ती साथी के तीन लोगों को मार देती है। पुलिस फायरिंग में बसन्ती मर जाती है। वहाँ

बसन्ती के खून के पास रुपये का एक सिक्का पड़ा हुआ था । बसन्ती का लड़का उस रुपये को उठाते हुए प्रतिज्ञा करता है कि उस रुपये से बन्दूक खरीदकर वह उसी राघो का खून करेगा ।

"सर्पदंश" डा. रामदरश मिश्र की कहानी है । उसका नायक गोकुल चमार है । कई दिनों का भूखा है । ठाकुर के खेत में मकाई लेने जाता है । वहाँ उसे एक साँप काटता है । वैसे भी भूख के कारण उसकी जीने की इच्छा समाप्त हो गई थी । परन्तु उसे गाँव में लाया जाता है । मंत्र से साँप के विष को झड़वाने की चेष्टा होती है । तभी उसके कान में उसके बेटे के शब्द पड़ते हैं और उसकी जिजीविषा प्रबल हो उठती है और वह बच जाता है ।

अन्य कहानियों में भी ठाकुर जमींदार के अत्याचार, अन्याय, जुल्म, यौन-शोषण, अस्पृश्यता, जातिगत भेद के कारण विवाह-संबंधों में खून-खराबा, आर्थिक शोषण, अंधविश्वास, छोटी जातियों में भी ऊँच-नीच के भेद आदि समस्याओं को लिया गया है ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दलित लेखकों की कहानियों में स्वानुभूति के कारण यथार्थ का रंग अधिक गहरा हो जाता है । ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी "अम्मा" दलित-चेतना संपन्न एक सशक्त एवं निरपेक्ष कहानी है । इस कहानी की अम्मा" एक दलित-चेतना संपन्न नारी है । वह अपने बच्चों को पढ़ा-लिखाकर कुछ योग्य बनाती है और उनको अपने पुश्तैनी काम से निजात दिलाती है । परंतु यहाँ लेखक ने सहस्यता के साथ ही यह चित्रित किया है कि यह पढ़ा-लिखा

दलित तबका किस तरह भ्रष्ट हो रहा है और वही कर रहा है जिसके लिए अगड़ी जाति के लोगों की निन्दा की जाती है । कुछ ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें दलित जीवन की भयंकर शोषण गरीबी का यथार्थ आकलन हुआ है जिनके कारण मानवीय जीवन-मूल्य चरमरा उठते हैं । ऐसी कहानियों में गोपाल रेडगावकर कृत "मुरदे", योगिराज वाघमारे कृत "गुजर-बसर" आदि हैं । कुमार पवार कृत "गिद्ध" की सईबाई प्रेमचंद और मटियानी के उन नारी पात्रों की याद दिलाती हैं जो अपने मान और सम्मान और "मरजाद" की रक्षा हर हाल में करती है । कुछ कहानियों में दलित-चेतना के स्वर अधिक मुखर होकर उभरे हैं, ऐसी कहानियों में डा. योगेन्द्र मेश्राम कृत "आगे बढ़ो ...", डा. कुसुम वियोगी कृत "और वह पढ़ गई ..." आदि को परिगणित कर सकते हैं । विद्रोहात्मक स्वर की कहानियों में डा. कुसुम वियोगी कृत "अंतिम बयान", सूरजपाल चौहान कृत "छूत कर दिया", डा. रमणिका गुप्ता कृत "परनाम नेताइनजी", डा. दयानंद बटोही कृत "सुरंग", जयप्रकाश कर्दम कृत "सांग" प्रह्लादचन्द दास कृत "लटकी हुई शर्त", मोहनदास नैमिशराय कृत "अपना गांव" प्रभृति कहानियों को ले सकते हैं । दलितेतर लेखकों की कहानियों में दलित-जीवन की कुछ समस्याओं और नंगी वास्तविकताओं को बेपर्द किया गया है ।

===== XXXXX ======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ चर्चित दलित कहानियाँ : सं. डा. कुसुम वियोगी : भूमिका से ।

§2§ कविता के सौ बरस : सं. डा. लीलाधर मंडलोई : पृ. 530 ।

§3§ वही : पृ. 530 ।

§4§ द्रष्टव्य : भाषा-विज्ञान : डा. भोलानाथ तिवारी : पृ. 264-265

§5§ कहानी : अम्मा : ओमप्रकाश वाल्मीकि : चर्चित दलित कहानियाँ : सं. डा. कुसुम वियोगी : पृ. 13 ।

§6§ से §10§ : वही : पृ. क्रमशः 14, 15, 15-16, 15 , 17 ।

§11§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 17 ।

§12§ द्रष्टव्य : वही: पृ. 17 ।

§13§ से §19§ : वही : पृ. क्रमशः 18, 18-19, 20, 20, 21, 20, 20-21 ।

§20§ द्रष्टव्य : दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : डा. शरणकुमार लिंबाले : पृ. 42-43 ।

§21§ आत्मकथ्य : शैलेश मटियानी : पहाड़ : पृ. 19 ।

§22§ कहानी : बुध सरना कहानी लिखता है : बुद्धशरण हंस : संकलन : उपरिवत् : पृ. 24 ।

§23§ से §26§ : वही : पृ. क्रमशः 24, 25, 23, 24 ।

§27§ कहानी : और वह पढ़ गई : डा. कुसुम वियोगी : संकलन- उपरिवत् : पृ. 28 ।

§28§ वही : पृ. 28 ।

§29§ द्रष्टव्य : कविता के सौ बरस : पृ. 530 ।

§30§ "xxx टिप्पणी §28§ के अनुसार : पृ. 30 ।

§31§ कहानी : अंतिम बयान : संकलन : उपरिवत् : पृ. 90 ।

§32§ से §36§ : वही : पृष्ठ क्रमशः 91, 91, 94, 94, 94, 95 ।

§37§ कहानी आगे बढ़ो : डा. योगेन्द्र मैश्राम : संकलन : उपरिवत् पृ. 33 ।

§38§ से §41§ : वही : पृ. क्रमशः 33, 34, 36, 37 ।

§42§ कहानी : सोनेरी टोली की करामातें : जहांगीरखानः संकलन : चर्चित दलित कहानियां : सं. डा. कुसुम वियोगी : पृ. 40 ।

§43§ वही : पृ. 42 ।

§44§ कहानी : गिद्ध : दया पवार : संकलन : उपरिवत् : पृ. 46 ।

§45§ से §48§ : वही : पृ. क्रमशः 47, 47, 47, 49 ।

§49§ कहानी : मुरदे : गोपालरेड्डगांवकर : संकलन : उपरिवत् : पृ. 50

§50§ से §52§ : वही : पृ. क्रमशः 50, 51, 52 ।

§53§ कहानी : गुजर-बसरः योगिराज वाघमारे : संकलन : उपरिवत् : 53

§54§ से §56§ : वही : पृ. क्रमशः 53, 56, 57 ।

§57§ कहानी : सांग : जयप्रकाश कर्दम : संकलनः उपरिवत् : 61 ।

§58§ वही : पृ. 62 ।

§59§ कहानी : छूत कर दिया : सूरजपाल चौहानः संकलन : उपरिवत्ः पृ. 64-65 ।

§60§ से §64§ : वही : पृ. क्रमशः 66, 66, 66, 67, 67 ।

§65§ कहानी - परनाम नेताइनजी : डा. रमणिका गुप्ता : संकलन : उपरिवत् : पृ. 69 ।

§66§ से §68§ : वही : पृ. क्रमशः 84 73, 75, 75 ।

§69§ कहानी : सुरंग : डा. दयानंद बटोही : पृ. 81 ।

§70§ द्रष्टव्य : कहानी : लटकी हुई शर्त : प्रह्लादचंद दास : पृ. 84 ।

§71§ वही : पृ. 88 ।

§72§ कहानी : अपना गांव : डा मोहनदास नैमिशराय : पृ. 119 ।

§73§ वही : पृ. 100 ।

==== xxxxx =======